

दशकुमारचरितम् में पुरुषार्थ-चतुष्टय का दार्शनिक एवं साहित्यिक विश्लेषण

Deep Narayan Kumar

Research Scholar

Department of Philosophy

Babasaheb Bhimrao Ambedkar University Muzaffarpur, Bihar 842001

April 2026

सार

दशकुमारचरितम्, जो दण्डी द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण संस्कृत गद्य काव्य है, भारतीय जीवन-दर्शन और सांस्कृतिक मूल्यों का समृद्ध दर्पण प्रस्तुत करता है। इस ग्रंथ में वर्णित कथाएँ न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि वे मानव जीवन के चार प्रमुख उद्देश्यों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पुरुषार्थ-चतुष्टय) — का गहन और बहुआयामी चित्रण भी करती हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य दशकुमारचरितम् में पुरुषार्थ-चतुष्टय के दार्शनिक तथा साहित्यिक पक्षों का विश्लेषण करना है। ग्रंथ में धर्म के रूप में नैतिकता, कर्तव्य और सामाजिक व्यवस्था का प्रतिपादन मिलता है; अर्थ के माध्यम से भौतिक समृद्धि, राजनीति और कूटनीति की महत्ता को दर्शाया गया है; काम के अंतर्गत मानवीय भावनाओं, प्रेम और सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति की गई है; जबकि मोक्ष का संकेत जीवन के उच्चतर आध्यात्मिक लक्ष्य के रूप में परोक्ष रूप से उपस्थित है। साहित्यिक दृष्टि से दण्डी ने रोचक कथानक, विविध चरित्र-चित्रण, अलंकारिक भाषा और वर्णन-कौशल के माध्यम से इन पुरुषार्थों को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। कथा के नायक विभिन्न परिस्थितियों में इन मूल्यों का अनुसरण करते हुए जीवन के यथार्थ और आदर्श के मध्य संतुलन स्थापित करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि दशकुमारचरितम् केवल एक मनोरंजक कथा-संग्रह नहीं, बल्कि भारतीय जीवन-दर्शन का एक सशक्त साहित्यिक दस्तावेज है, जिसमें पुरुषार्थ-चतुष्टय के माध्यम से जीवन के समग्र विकास और संतुलित दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है।

मुख्य शब्द: दशकुमारचरितम्, पुरुषार्थ-चतुष्टय, साहित्यिक

परिचय

भारतीय दर्शन और संस्कृति में मानव जीवन को एक समन्वित एवं उद्देश्यपूर्ण यात्रा के रूप में देखा गया है, जिसमें नैतिक, भौतिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक सभी आयामों का संतुलित विकास आवश्यक माना गया है। इसी दृष्टि से पुरुषार्थ-चतुष्टय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—का सिद्धांत भारतीय चिंतन परंपरा की आधारशिला के रूप में स्थापित हुआ है। यह सिद्धांत न केवल दार्शनिक ग्रंथों में, बल्कि साहित्यिक कृतियों में भी व्यापक रूप से परिलक्षित होता है। दशकुमारचरितम्, जो दण्डी की सुप्रसिद्ध रचना है, संस्कृत साहित्य में गद्य-काव्य की उत्कृष्ट परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। यह ग्रंथ रोमांचक कथाओं, विविध चरित्रों और जटिल जीवन-स्थितियों के माध्यम से तत्कालीन समाज, राजनीति, संस्कृति और मानव-स्वभाव का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही, इसमें निहित कथानक केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे जीवन के गूढ़ दार्शनिक सत्यों को भी उद्घाटित करते हैं। दशकुमारचरितम् में वर्णित दस राजकुमारों के साहसिक अनुभवों के माध्यम से जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया गया है, जिनमें पुरुषार्थ-चतुष्टय का समन्वित रूप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। धर्म के रूप में कर्तव्य और नैतिकता, अर्थ के रूप में

संसाधनों की प्राप्ति और राजनीतिक चातुर्य, काम के रूप में मानवीय भावनाएँ और सौंदर्यबोध, तथा मोक्ष के रूप में जीवन के अंतिम लक्ष्य की झलक इस ग्रंथ में विविध प्रसंगों के माध्यम से प्रकट होती है। साहित्यिक दृष्टि से यह कृति अपनी सजीव वर्णन-शैली, अलंकारिक भाषा, और रोचक कथा-रचना के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दण्डी ने कथा-विन्यास और चरित्र-चित्रण के माध्यम से न केवल समाज का यथार्थ चित्रण किया है, बल्कि आदर्श जीवन-मूल्यों को भी स्थापित करने का प्रयास किया है। इस प्रकार, प्रस्तुत शोध का उद्देश्य दशकुमारचरितम् में निहित पुरुषार्थ-चतुष्टय के दार्शनिक एवं साहित्यिक स्वरूप का विश्लेषण करना है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि यह कृति किस प्रकार भारतीय जीवन-दर्शन को साहित्यिक रूप में अभिव्यक्त करती है।

धर्म :-

भारतीय संस्कृति में धर्म की शास्त्रीय व्याख्या की गई हैं- 'धारणात धर्मः ।'

अर्थात् जिसे धारण किया जाय वह धर्म है। धर्म प्रजा को धारण करता है-

'धारणाद धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।

यत् स्याद् धारणासंयुक्तं स धर्म इत्युदाहृतः ॥

अर्थात् जो नियम जीवन धारण करते हैं, अर्थात् व्यक्ति और समाज के जीवन को सहारा देते हैं उन्हें धर्म कहते हैं। धर्म का उद्देश्य और कसौटी प्रजा के जीवन की रक्षा करना है। जिस तत्व में धारण या रक्षण की यह शक्ति हो उसे ही धर्म कहा जायेगा।

महापुराण में : धर्म की परिभाषा करते हुए उसके ये लक्षण बताये गये हैं- दम, क्षमा, अहिंसा, तप, दान, शील, योग, वैराग्य, सत्यवादिता, अस्तेय, निष्कामता, अपरिग्रह। इनमें से प्रत्येक में स्वतन्त्र रूप से मानव को सुख और शान्ति प्रदान करने की शक्ति है-

"धर्मस्य तस्य लिंगानि दमः क्षान्तिरहिंसा,

तपोदानं च शीलं च योगो वैराग्यमेव धा

अहिंसा सत्यवादित्यमचौर्यम त्यक्तकामता,

निष्परिग्रहता चेति प्रोक्तो धर्मः सनातनः ।"

मनु ने धर्म के चार लक्षण माने हैं- वेद, स्मृति तथा सदाचार से समस्त और अपनी आत्मा का प्रिय धर्म होना चाहिए अर्थात् आत्मा अत्यन्त व्यापक है। सज्जनों का आचरण दूसरों के लिए धर्म हैं, जो आत्म-कल्याण करें वही धर्म हैं।

महर्षि कणाद ने तो धर्म के अनुरूप लौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस की सिद्धि मानी है-

"यतोऽभ्युदयनिः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः ।"

धर्म के उपरोक्त विवेचना के उपरान्त हम दण्डी के 'दशकुमारचरितम्' प्रतिपादित धर्म नामक पुरुषार्थ के स्वरूप पर विचार करते हैं। 'दशकुमारचरितम्' में धर्म, अर्थ काम को 'त्रिवर्ग' कहा गया है-

'त्रिवर्गसंवन्धिनीभिः कथाभिः'

सैद्धान्तिक दृष्टि से धर्म को अर्थ और काम से श्रेष्ठ माना था। धर्म को ही अर्थ और काम की उत्पत्ति में सहायक साधन माना गया था। धर्म बाह्य उपायों के अधीन रहने वाला नहीं है अर्थात् धर्म का सम्बन्ध अन्तःकरण की शुद्धि और पवित्रता से है। तत्त्वदर्शन या सत्य के ज्ञान से धर्म की शुद्धि होती है। धर्माचरण से पवित्र मन को रजोगुण उसी प्रकार लिप्त नहीं कर सकते जैसे आकाश को धूल-

'मूढः खलु लोको यत्सह धर्मेणार्थकामावपि गणयति..... अर्थकामातिशायी धर्म...। ननु धर्मादृते ऽर्थकामयोर्नुत्पत्तिरेव । तदनपेक्ष एव धर्मो निवृत्ति सुख प्रसूतिहेतुरात्मसमाधानमात्रसाध्यश्च ।"

दण्डी की दृष्टि में धर्म मानवीय कर्तव्यों और सदाचार का ही पर्याय है। सदाचार सभी प्रकार के कल्मषों का क्षय करता है-

'कलमषक्षयकारणं सदाचारमुपदिष्य'

लोककल्याणकारी पुण्य-कर्म ही धर्म का स्वरूप है। स्वधर्म का पालन सुचरित और परधर्म का अंगीकार निन्दित चरित्र कहा जाता है निन्दित आचरण वाले मनुष्य भी अपने कल्मषों का क्षय कर स्वधर्म में प्रवृत्त हो सकते हैं। मातङ्ग . का चरित्र इसका उदाहरण है-

तेषु कस्यचित्पुत्रो निन्दपात्रचारित्रो मातङ्गो नामाहं सह किरातबलेन जनपदं प्रविश्य ग्रामेषु धनिनः स्त्रीबालसहितानानीयाटव्यां बन्धने निधाय तेषां सकलधनमपहरन्नुद्धृत्य वीतदयो व्यचरम् । कदाचिदेकस्मिन्कान्तारे मदीयसहचरगणेन जिघांस्यमानं भूसुरभेकमवलोक्य दयायन्तचित्तोऽनवम् ननु पापाः, न हन्तव्यो ब्राह्मण इति ।"

एक श्रेष्ठ सुन्दर समाज का आधार स्वधर्म का पालन ही है। अतः दशकुमारचरितम् के सभी कुमार अधर्मी, अत्याचारी और पशुतुल्य आचरण करने वाले क्रूरकर्मा नर-पशुओं को दण्ड देते हुए निर्बलों और दलितों के अधिकारों की रक्षा करते हुये समाज में धर्म और सदाचार का आदर्श स्थापित करते हैं। कथानायक राजवाहन निःस्वार्थ भाव से मातङ्ग . की सहायता के लिए तत्पर होते हैं तो सोमदत्त दुराचारी मत्तकाल का वधकर वीरकेतु की पुत्री वामलोचना के सम्मान की रक्षा करते हैं। इसी प्रकार, पुष्पोद्भूव परदार्य और परद्रव्य के अपहरण एवं बलात्कार जैसे दुष्कर्मों में लिप्त दारुवर्मा जैसे नरपिशाच का वध कर धरती तल पर आततायियों का भार कम करते हैं।

दण्डी की दृष्टि में धर्म एक प्रकार की मर्यादा है जिसका पालन न करने वाले समाज और शासन दोनों ही इस लोक और परलोक से भ्रष्ट हो जाते हैं-

निर्मर्यादश्च लोको लोकोदितोऽमुतश्च स्वाभिनमात्मानं च भ्रंशयते।"

इस संसार में रहते हुए कुलधर्म का पालन स्वर्ग की प्राप्ति करने वाला और सर्वसुलभ समझा जाता था, इसके विपरीत वनवास से स्वर्ग प्राप्ति सामान्य गृहस्थों के लिए कष्टसाध्य मानी जाती थी-

"द्वितीयस्तु सर्वस्यैव सुलभः कुल धर्मानुष्ठायिनः ।"

राज-धर्म, धर्म-मित्र, तापस-धर्म, पत्नी-धर्म, गणिका धर्म आदि पर भी दशकुमारचरितम् में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

छाया के समान सुहृद का अनुसरण करना 'छायावन्मामनूवर्तमानस्य एवं उसके मित्र के सुख-दुःख में साथ देना मित्र का धर्म माना जाता था। दस कुमारों का चरित्र इस मित्र धर्म का श्रेष्ठ उदाहरण है। मित्रों में हार्दिक संवाद की स्थिति होती थी एवं परस्पर गुप्त या अकथ्य कुछ भी नहीं रहता था-

सतां वख्यस्याभषणपूर्वतया चिरं रोचकरभाषणो भवानस्माकं प्रियवयस्यो जातः। सुहृदामकथ्यं च किमस्ति ?"

तटस्थ भाव से बन्धु-अबन्धु को न देखते हुए दुष्ट दमन क्षत्रिय का धर्म माना गया था-

'एष खलु क्षात्रधर्मो यद्वन्धुरबन्धुर्वा दुष्टः स निरपेक्षं निग्राह्य इति।"

अर्थ-

अर्थ को हिन्दू धर्म में मानव जीवन का दूसरा पुरुषार्थ माना गया है। अर्थ मनुष्य के आर्थिक और राजनैतिक जीवन के बारे में तथा प्रभुता और सम्पत्ति की लालसा के सम्बन्ध में विचार करता है। बिना अर्थ के व्यक्ति अपने सामाजिक और धार्मिक कर्तव्यों को पूरा नहीं कर सकता। अर्थ को एक पुरुषार्थ इसलिए माना गया है क्योंकि इसे बिना परिश्रम के प्राप्त नहीं किया जा सकता।

भारतीय संस्कृति में भौतिक उन्नति और आध्यात्मिक उन्नति का समान महत्व है। भौतिक उन्नति की प्राप्ति के लिए अर्थ पुरुषार्थ का सेवन आवश्यक है क्योंकि व्यक्ति के सभी प्रयोजन अर्थ से सिद्ध होते हैं, इसलिए संसार के सभी लोग अर्थ की अभिलाषा रखते हैं। तदनुसार 'अर्थ्यते सर्वे: इति अर्थः अर्थ शब्द के अनेक अर्थ हैं तथापि अर्थ पुरुषार्थ का अभिप्राय मुख्य रूप से जीविकोपार्जन अथवा धनार्जन करना है, ताकि व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ धर्म तथा काम पुरुषार्थों की सिद्धि भी कर सके।

दण्डी ने सभी प्रकार के सांसारिक कार्यों के सम्पादन का साधन वित्त या अर्थ को मानते हैं-

"अखिलकार्यनिमित्तं वित्तं"

शासन सम्बन्धी कर्म भी अर्थमूलक ही है-

"अर्थमूला हि दण्डविशिष्टकर्मारम्भा ।"

सम्पत्ति या समृद्धि सामाजिक प्रतिष्ठा का कारण है तो दरिद्रता अवज्ञा या अपमान का- "अवज्ञासोदर्यं दारिद्र्यम्।"

वर्तमान युग की भाँति दण्डी के युग में भी दरिद्रता से पीड़ित व्यक्ति आत्महत्या के लिए तत्पर हो जाते थे, जैसा कि धनमित्र के वृत्तान्त से ज्ञात होता है। मानवीय प्रतिभा, उपायचातुरी और पुरुषार्थ को महत्व देने वाले दण्डी की दृष्टि में यह कायरता है क्योंकि इस संसार में धन प्राप्ति के अनेक उपाय हैं, प्राण प्राप्ति के नहीं। अतः व्यक्ति को अपने पुरुषार्थ (उद्योग) से अर्थ रूप पुरुषार्थ को अर्जित करने का प्रयास करना चाहिए-

'सन्त्युपाया धनार्जनद्यद्यस्य बहवः, नैकोऽपि च्छिन्नकण्ठप्रतिसन्धानपूर्वस्य प्राणलाभस्य'

अर्थ नामक पुरुषार्थ के सैद्धान्तिक पक्ष का निरूपण करते हुए दण्डी कहते हैं- अर्थ का विषय है-धन का अर्जन, वर्धन और रक्षण इसकी प्राप्ति के साथ हैं- कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, संधि-विग्रह आदि तथा इसका फल या उद्देश्य है- योगपात्र को धन का दान देना-

"अर्थस्तावदर्जनवर्धनरक्षणात्मकः कृषिपाशुपाल्यवाणिज्यसंधिविग्रहादि परिवारः तीर्थ प्रतिपादनफलश्च ।"

प्रत्येक व्यक्ति के कर्तव्य है कि वह अर्थोपार्जन का आय करें। अर्थार्जन में दुर्बलता से बढ़कर कोई पाप नहीं है-

अर्थ का जीवन में महत्व होते हुए भी अर्थ ही सबकुछ नहीं है, धर्म निश्चित रूप से अर्थ से श्रेष्ठ है तथा अर्थ नश्वर और चंचल भी है-

"जलबुद्बुदसमाना विराजमाना संपत्तडिल्लितेव सहसैवोदेति नश्यति च।"

कामः

काम को सांसारिक जीवन की आवश्यकता के रूप में एक पुरुषार्थ माना गया है। इसे सबसे निम्न पुरुषार्थ माना गया है। काम की परिभाषा है-

"काम्यते जनैरिति कामः सुखः"

मनुष्यों द्वारा जिसकी कामना की जाय, वह काम है तथा यह काम सुख ही है। अर्थ प्राप्ति का लक्ष्य सुख की प्राप्ति है। वास्तव में मनुष्य की लोक यात्रा में जो स्थान धर्म और अर्थ का है, वही स्थान 'काम' का भी है। काम शब्द 'काम्यते इति कामः' इस व्युत्पत्ति के आधार पर विषय और इन्द्रिय के संयोग से उत्पन्न मानसिक आनन्द, अर्थ बताता है। 'काम' शब्द 'इच्छा' और कामना को भी कहा जाता है। वस्तुतः मानव उन्हीं पदार्थों की इच्छा करता है, जो उसे मानसिक और शारीरिक आनन्द देते हैं। अपनी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के द्वारा विभिन्न पदार्थों की जो इच्छा मनुष्य करता है और इन सब पदार्थों को पाने के लिए जो प्रयास या उद्योग करता है, वही 'काम' है। यदि अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति धर्मानुकूल उद्योग करता है तो वह 'काम' पुरुषार्थ की संज्ञा प्राप्त कर लेता है।

इस संसार की सृष्टि के मूल कारण काम नामक पुरुषार्थ के स्वरूप पर विचार करते हुए दण्डी कहते हैं कि सांसारिक विषयों में अत्यासक्त चित्त वाले स्त्री-पुरुषों का अतीव सुखकारी उत्कृष्ट स्पर्श काम है। इस संसार के सभी रमणीय और उज्ज्वल पदार्थ इसके अंग हैं। इसका फल एक ऐसा परमाह्लादिक अपरोक्ष, स्वसंवेद्य सुख है जो परस्पर आलिंगनादि विमर्दन से जन्म लेता है, स्मरण मात्र में ही मधुर होता है, अहंकार का उद्दीप्त करता है। इससे उत्तम कोई अनुभूति नहीं है-

"फलं पुनः परमाहृदनम परस्परविमर्दजन्म, स्मर्ययाणमधुरम् उदीरिताभिमानमनुत्तमम् सुखमरोक्षं स्वसंवेद्यमेव ।"

इस काम नामक पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए ही संसार में कठोर तप, महान दान, दारुण युद्ध, समुद्र लंघनादि दुःसाहस किये जाते हैं। यह एक एकसी वृत्ति है जिससे स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, देव-दानव सभी आक्रान्त होते हैं। यह उचितानुचित विषयों को समाप्त कर देता है। मारीचि जैसे स्वनामधन्य तपस्वी का काममन्जरी के जाल में फंसकर कामी पुरुषवत् आचरण इसका प्रमाण है-

"स्नातानुलिप्तमारचितमुन्जुमालमारब्धकामिजन वृत्तं निवृत्तस्ववृत्ताभिलाषं क्षणमात्रेगतेऽपि तया विना दद्यामानम्।" दण्डी सी प्रसंग में देवताओं से सम्बन्धित पौराणिक संदर्भों की सूची भी प्रस्तुत करते हैं जो देव योनि में भी काम भाव की प्रबलता को प्रतिपादित करता है। जैसे कि पितामह ब्रह्मा की तिलोत्तमा के प्रति अभिलाषा, भवानीपति-शंकर का मुनिपत्नियों से संपर्क, पद्मनाथ कृष्ण का षोडश सहस्र अन्तः पुरिकाओं से विहार, प्रजापति का अपनी पुत्री के प्रति प्रणय, चन्द्रमा का गुरुपत्नी से सहवास आदि-

पद्मनाभस्य तथापि पितामहस्य तिलोत्तमाभिलाषः भवानीपतेर्मुनिपत्नीसहस्रसंदूषणम्, षोडशसहस्रान्तःपुरविहारः प्रजापतेः स्वदुहितर्यपि प्रणयप्रवृत्तिः, शचीपतेरहल्याजारता, शशांकस्य गुरुतल्पगमनम्, अंशुमालिनो वडवालन्धनम्, अनिलस्य केसरिकलत्रसमागमः, वृहस्पतेरुथ्यभार्याभिसरणम्, पराशरस्य दाशकन्यादूषणम्, पराशर्यस्य भ्रातृदारसंगतिः अत्रेमृगीसमागम इति।"

जीवन और जगत का यथार्थ चित्रण करने वाले दण्डी समाज में व्याप्त कामाचार का यथार्थ चित्रण करते हैं, जिसमें कामपीडितों द्वारा परस्त्रीगमन, बलपूर्वक कन्या का अपहरण एवं बलात्कार जैसे जघन्य कृत्य किये जाते हैं।

इनके दुष्परिणामों से अवगत कराते हुए धर्म की सीमाओं से मर्यादित काम को ही सनीय मानते हैं।

मोक्ष-

मोक्ष पुरुषार्थों में चरम पुरुषार्थ है। धर्म, अर्थ, काम-भौतिक पुरुषार्थ है जबकि मोक्ष आध्यात्मिक पुरुषार्थ है। धर्म, अर्थ और काम व्यक्ति को सांसारिकता की ओर प्रवृत्त करते हैं और मोक्ष व्यक्ति को सांसारिकता से निर्वृत्त करता है।

व्यावहारिक रूप से मोक्ष एक पुरुषार्थ नहीं बल्कि सभी पुरुषार्थों का अंतिम लक्ष्य है। इसके पश्चात् भी मोक्ष को एक पुरुषार्थ इसलिए स्वीकार किया गया है कि इसे प्राप्त करने के लिए भी व्यक्ति को कठिन साधना और परिश्रम करना आवश्यक है। मोक्ष एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने कर्तव्यों का सर्वोत्तम ढंग से पालन करके आत्म-सन्तुष्टि के सर्वोच्च स्तर को प्राप्त कर लेता है।

गीता के अनुसार-

"मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।

अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः ॥"

"अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्।"

मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है-

"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति

मोक्ष का तात्पर्य किसी दूसरे लोक अथवा स्वर्ग को प्राप्त कर लेना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ ज्ञान के द्वारा सांसारिक मोह माया से पृथक् होकर आत्मा के स्वरूप को पहचान लेना है। इसी को प्रतीकात्मक रूप से पुनर्जन्म के बन्धन से

मिलने वाली मुक्ति कहा गया है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में, मोक्ष ही वह प्रमुख लक्ष्य है जिसे प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ के रूप में धर्म, अर्थ और काम की व्यवस्था की गई है।

धर्म, अर्थ और काम ऐसे पुरुषार्थ हैं जिनका सम्बन्ध जनसामान्य से है, किन्तु भारतीय समाज में स्वीकृत एक चरम पुरुषार्थ और है जिसे मोक्ष कहा गया है। जो मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य होते हुये भी जनसामान्य के लिए दुर्लभ है जिसे कुछ गिने-चुने महामानव ही प्राप्त कर पाते हैं। दण्डी के अनुसार मोक्ष का अर्थ सांसारिक बन्धन या जन्म-मरण चक्र से मुक्ति है, उन्होंने इसे 'अपवर्ग' भी कहा है। हिन्दू आश्रम-व्यवस्था में स्वीकृत वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम मोक्ष की दिशा में बढ़ने का क्रमिक सपना है। जीवन के तृतीय चरण में वानप्रस्थ आश्रम में रहते हुये ऋषि-मुनियों के निर्देशन में आत्म-साक्षात्कार और आत्मज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न किया जाता था।

सांसारिक सुखों से विरक्त अथवा सांसारिक वंचनाओं से निर्वेद को प्राप्त युवा भी पारलौकिक अभ्युदय को प्राप्त करने के लिए मोक्ष मार्ग पर चल पड़े थे। ऋषि-मुनि अथवा तपस्वी उनके मार्ग दर्शक होते थे—“ऐहिकस्य सुखस्याभाजनं जनोऽयमामुष्कीय श्वोसीयायार्ताभ्युपपत्तिवित्त-योर्भगवत्पादयोर्मूलं शरणमभि प्रपन्नः

इति।”

एव

“जैनायतने मुनिनैकेनोपरिष्टमोक्षवर्मा ।”

निष्कर्ष

दशकुमारचरितम् के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यह कृति केवल मनोरंजनप्रधान कथा-साहित्य नहीं है, बल्कि भारतीय जीवन-दर्शन की गहन अभिव्यक्ति भी है। दण्डी ने अपने अद्वितीय कथानक, सजीव चरित्र-चित्रण तथा अलंकारिक भाषा के माध्यम से मानव जीवन के विविध आयामों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। इस ग्रंथ में पुरुषार्थ-चतुष्टय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—का समन्वित और व्यावहारिक चित्रण मिलता है। धर्म के रूप में नैतिकता, कर्तव्य और सामाजिक मर्यादाओं का पालन; अर्थ के रूप में भौतिक समृद्धि, राजनीतिक कुशलता और जीवन-निर्वाह के साधनों की प्राप्ति; काम के रूप में मानवीय भावनाओं, प्रेम और सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति; तथा मोक्ष के रूप में जीवन के उच्चतम आध्यात्मिक लक्ष्य की झलक—ये सभी तत्व कथा के विभिन्न प्रसंगों में सुसंगत रूप से अंतर्निहित हैं। दशकुमारचरितम् का विशेष महत्व इस बात में निहित है कि इसमें आदर्श और यथार्थ के मध्य संतुलन स्थापित किया गया है। नायकगण जीवन की विविध परिस्थितियों में पुरुषार्थों का पालन करते हुए यह दर्शाते हैं कि जीवन का पूर्ण विकास तभी संभव है, जब इन चारों उद्देश्यों का समन्वित अनुसरण किया जाए। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यह कृति भारतीय संस्कृति और दर्शन का एक सशक्त साहित्यिक दस्तावेज है, जो न केवल अपने समय के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश को प्रतिबिंबित करती है, बल्कि आज के संदर्भ में भी जीवन-मूल्यों की प्रासंगिकता को रेखांकित करती है। दशकुमारचरितम् में निहित पुरुषार्थ-चतुष्टय की अवधारणा मानव जीवन को संतुलित, सार्थक और उद्देश्यपूर्ण बनाने की प्रेरणा प्रदान करती है।

सन्दर्भ-

1. दण्डी. दशकुमारचरितम्. विभिन्न संस्कृत संस्करण, वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत संस्थान।
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल. हिन्दी साहित्य का इतिहास. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।

3. बलदेव उपाध्याय. संस्कृत साहित्य का इतिहास. वाराणसी: चौखम्भा प्रकाशन।
4. वाचस्पति गैरोला. संस्कृत साहित्य का इतिहास. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
5. कपिलदेव द्विवेदी. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन।
6. मनुस्मृति. विभिन्न संस्करण।
7. महाभारत. गीता प्रेस, गोरखपुर।
8. रामायण. गीता प्रेस, गोरखपुर।
9. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (संपादक) . भारतीय संस्कृति और दर्शन. प्रयागराज: साहित्य भंडार।
10. हजारीप्रसाद द्विवेदी. संस्कृत साहित्य की भूमिका. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
11. दशकुमारचरितम्, उ०पी० उच्छवास, 8 पृष्ठ 415
12. वही, उच्छवास 2, पृष्ठ 138
13. वही पेज 101
14. वही, पू०पी०, उच्छवास, 4 पृष्ठ 67-68
15. वही, उच्छवास 2, पृष्ठ 168
16. मुण्डकोपनिषद्, 3/2/9